समाचारों से बनता शिक्षा–दृश्य

❑ रामकुमार सिंह

पत्रकारिता की दुनियां में शिक्षा विषयक समाचार शायद ही प्राथमिकता क्रम में रहे हों - एक तो यही शोचनीय मुद्दा है । लेकिन हाशिये पर ही सही यदि आप समाचार-पत्रों में प्रकाशित शैक्षिक समाचारों को सिलसिलेवार देखना शुरू करें तो शिक्षा–जगत की एक वस्तुपरक तस्वीर आपके सामने आ जायेगी। इस तस्वीर का आप कई कोणों से विश्लेषण कर सकते हैं । यहां मार्च, 98 से अगस्त, 98 तक छह माह की अवधि के दौरान दो समाचार पत्रों में छपी कुछ खास खबरों को एक साथ रखकर उन पर सामान्य टीका-टिप्पणी की जा रही है । हमारी कोशिश होगी कि आगे हम गंभीर समाचार-विश्लेषण और शिक्षा–विषयक जरूरी समाचार प्रकाशित करें ।

यह एक विश्लेषण की कोशिश है । इसमें हमने दो दैनिकों में पिछले छ: माह के दौरान (मार्च से अगस्त 98 तक) प्रकाशित शिक्षा-समाचारों को अपने अध्ययन का आधार बनाया है । एक दैनिक प्रादेशिक (राजस्थान पत्रिका) है और दूसरा राष्ट्रीय (जनसत्ता)।

आमतौर पर पत्रकारिता में शैक्षिक समाचार बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान पाते हों, ऐसा नहीं है । जो समाचार आते हैं उनमें भी घोषणाएं और वेतन-भत्तों के बारे में ज्यादा टीका-टिप्पणियां होती हैं । रचनात्मक स्तर पर शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर पत्रकारिता की यह उपेक्षा ठीक नहीं है । बहरहाल, यह हो सकता है कि इस चयन में हमसे कुछ खबरें छूट भी गयी हों। इस विश्लेषण के लिए मौटे तौर पर उभर कर आने वाले शैक्षिक रुझानों का हम क्रमश: विवेचन करेंगे ।

प्रबंधगत दोष

बच्चों के पढ़ने के लिए विद्यालय तो हैं पर भवन नहीं है । प्रादेशिक दैनिक की एक खबर के मुताबिक जयपुर जिले की बस्सी पंचायत समिति के गांव प्रेमपुरा में बच्चे पेड़ के नीचे या बाहर बैठकर पढ़ते हैं । वर्षा में भीगते हैं और बीमार हो जाते हैं । समाचार में आगे यह भी स्पष्ट होता है कि कई औपचारिकताओं के बाद ग्रामीण विकास अभिकरण ने निर्माण कार्य शुरू करवाया तो कुछ लोगों ने अतिक्रमण कर लिया । बहरहाल यह स्थिति है इसी गांव के बच्चों के पढ़ने की समस्या और गांव के लोगों की शिक्षा के प्रति गंभीरता की ।

बालिका शिक्षा को लेकर राजस्थान में अक्सर ढ़िंढ़ोरा पीटा जाता है । मानव संसाधन विकास मंत्रालय के हवाले से स्थानीय दैनिक में छपी खबर अधिकारिक स्तर पर इस बात की चुगली करती है कि प्राथमिक शालाओं में मात्र एक तिहाई छात्राएं पढ़ने जाती हैं। हालांकि राज्य की महिला साक्षरता दर के मुकाबले यह तादाद ज्यादा है लेकिन खुशी देने वाली नहीं ।

इसी सिलसिले में हम उल्लेख करना चाहेंगे इन दैनिकों में छपे दो चित्रों का । राष्ट्रीय दैनिक में एक बच्ची के हाथ में हथौड़ा है और दूसरी उसके पास ही बैठी है । फोटो का कैप्शन है : पत्थर तोड़कर पेट भरने का जुगाड़ करता बचपन । दूसरा चित्र स्थानीय दैनिक का है । जयपुर के निकट नृसिंहपुरा गांव के एक विद्यालय के चित्र में दो छात्राएं एक पेड़ के नीचे झाडू लगा रही है जहां थोड़ी देर बाद उनकी कक्षा शुरू होने वाली है । पेड़ पर अनेक बस्ते टंगे हुए हैं । दैनिक ने फोटोकैप्शन भी विस्मयकारी दिया है ''वसुधा पर सुधा ज्ञान की गरिमा, जीवन में है श्रम की भी महिमा'' । बहरहाल यह कौनसा श्रम है जिसकी महिमा जीवन में बताई जा रही है ? इस पर टिप्पणी करना संभवतया अब आवश्यक नहीं हैं ।

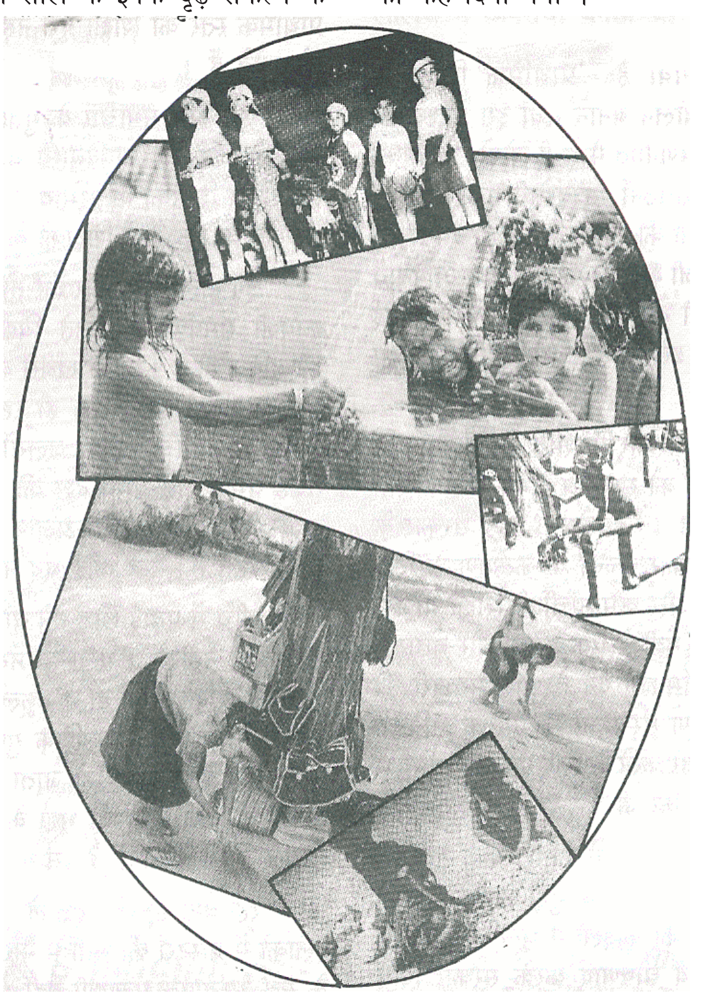
घोषणाएं और आह्वान

इस मामले में राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर सरकारें काफी आगे हैं । लोकतंत्र के जरूरी लक्ष्यों में यह भी आ गया है कि अधिकाधिक घोषणाएं और आह्वान हों । जुलाई माह में राजस्थान के शिक्षामंत्री की चेतावनी छपी है कि अनुदानित शिक्षण संस्थाएं यदि शहरों में स्कूल चलाना चाहती हैं तो उन्हें झुग्गी झोपड़ियों या कच्ची बस्तियों में कम से कम एक विद्यालय खोलना पड़ेगा । खबर के मुताबिक शिक्षा मंत्री यह स्वीकार करते हैं कि प्रदेश की ज्यादातर अनुदानित शिक्षण संस्थाएं एक तरफ तो सरकार से 50 से 90 प्रतिशत तक सहायता लेती हैं इसके बावजूद वे भारी फीस वसूल करती हैं । शिक्षा मंत्री ने यह भी कहा कि अनुदानित शिक्षण संस्थाओं को अंधाधुंध कमाई का साधन बना लिया गया है । उन्होंने यहां तक स्वीकार किया कि कुछेक संस्थाओं को छोड़कर बहुत सारी संस्थाओं में अनुदान का समुचित इस्तेमाल नहीं हो रहा ।

शिक्षा मंत्री का यह बयान कितना प्रभावी है ? उनकी चेतावनी का क्या हुआ कोई नहीं जानता । खासकर सरकारी विद्यालयों को कोसना लोगों की आदत है लेकिन शिक्षामंत्री चूंकि सरकार के आदमी हैं, अत: अपनी स्कूलों की वकालत तो करेंगे ही। हम यह

बता देना जरूरी समझते हैं कि ये वही शिक्षा मंत्री हैं जिन्होंने भारी फीस वसूलने वाली संस्थाओं के खिलाफ बार बार चेतावनी दी है। जनता में इनकी छवि एक सख्त मिजाज मंत्री की है। सिफारिशें नहीं मानना इनका स्वभाव बताया जाता है । सार्वजनिक मंचों से इन्होंने बराबर घोषणाएं की हैं कि भले ही चुनाव हार जाऊं लेकिन शैक्षिक सुधार जारी रखूंगा। पिछले पांच साल के इनके दृढ़ संकल्प के बावजूद गत वर्ष आठवीं की बोर्ड परीक्षा का परिणाम 360 सरकारी स्कूलों में शून्य प्रतिशत रहा । घोषणाओं का असर कितना होता है, सामने आ गया ।

इसी प्रकरण से जुड़ी एक और जानकारी । शिक्षा मंत्री महोदय ने विधानसभा में कहा कि जिन स्कूलों में शून्य परिणाम रहा, वहां के संस्था प्रधानों का तबादला कर दिया जाएगा । साथ 40 प्रतिशत से कम परीक्षा परिणाम रहे विद्यालयों के हेडमास्टरों को कारण बताओ नोटिस जारी किए जाएंगे ।



इसकी क्रियान्विति अब हो रही है इसमें कोई संदेह नहीं । लेकिन क्या परिणामों की दरिद्रता को सुधारने के लिए संस्था प्रधानों को बदल देना ही पर्याप्त है ? शिक्षण संस्थाओं के परिणामों के बारे में मंत्री महोदय ने सदन में जानकारी दी कि गैर-सरकारी शिक्षण संस्थाओं के 67 प्रतिशत और सरकारी स्कूलों के 47 प्रतिशत विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । शिक्षा मंत्री कहते हैं सरकारी विद्यालयों की कमियों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है ।

शिक्षक दिवस पर सम्मानित होने वाले शिक्षकों में सरकारी स्कूलों के शिक्षक ही होते हैं । शिक्षा के नाम पर यह भेदभाव शिक्षामंत्री सिर्फ इसलिए कर रहे हैं कि उन्हें सरकारी स्कूलों का स्तर सुधारना है । शिक्षामंत्री को निजी क्षेत्र में जूझते शिक्षक या उनके विद्यार्थियों के अध्ययन के स्तर की शायद कोई चिंता नहीं है । सरकारी स्कूलों के प्रति शिक्षा मंत्री का यह अतिरिक्त मोह शिक्षा का कितना भला कर पा रहा है इसके बारे में सोचा जाना चाहिए ।

जुलाई माह में ही स्थानीय दैनिक ने राज्य विधानसभा में दिए गए शिक्षामंत्री के वक्तव्य का समाचार छपा है । शिक्षा मंत्री का कहना है कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू करने के लिए पहले राज्य में प्रारंभिक शिक्षा का आधारभूत ढांचा तैयार किया जाना जरूरी है । इन आवश्यकताओं के आकलन के लिए जिला कलेक्टरों को कह दिया गया ।

मामला धीरे-धीरे सरकता रहेगा । अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की बात काफी दिनों से चल रही है । आगे भी चलती रहेगी ।

अगस्त माह में समाचार एजेन्सी पीटीआई के हवाले से खबर छपी कि शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विधेयक शीघ्र आने वाला है । विधि आयोग उच्चतम न्यायालय के 1993 के फैसले के संदर्भ में अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए एक विधेयक का प्रारूप तैयार कर रहा है। खबर विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी. जीवनरेड्डी के साक्षात्कार पर आधारित है । न्यायमूर्ति रेड्डी इसमें स्वीकार करते हैं कि उच्चतम न्यायालय के फैसले को लागू करने के उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 21 (एक) के तहत इस बारे में एक विधेयक पारित कराने में सरकार के प्रयास विफल रहे हैं। न्यायालय के फैसले के क्रियान्वयन के प्रति भी सरकार कितनी उदासीन है यह इससे साफ जाहिर होता है । जबकि शिक्षा की जर्जर हालत के बारे में विधि आयोग के अध्यक्ष की टिप्पणी है कि ''अब सरकार को बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधाओं और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए क्योंकि अब समस्या गंभीर रूप ले चुकी है ।''

हालात की इतनी स्पष्टता के बावजूद किसी भी स्तर पर क्या ऐसे बयानों को गंभीरता से लिया जाता है ? क्या ऐसे बयानों से शैक्षिक परिवेश में सुधार की कोई गुंजाइश व्यवहार में दिखती है? इसके बारे में सोचा जाना चाहिए । अगर इन बयानों के प्रति उपेक्षा बरती जाती है तो इसके क्या कारण है और वे कौन से दुष्परिणाम

हैं जो शिक्षा के प्रति लगातार हो रही उपेक्षा के कारण पनपेंगे ?

समाचार एजेंसी 'वार्ता' के हवाले से 19 जुलाई को स्थानीय दैनिक में खबर छपी कि राज्य सरकार प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक लक्ष्य को समयबद्ध अवधि में पूरा करने के लिए राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा मिशन की स्थापना करने संबंधी सुझाव पर विचार कर रही है ।

समाचार में आगे कहा गया है ''प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को एक जन–आंदोलन बनाने तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनाई जाने वाली रणनीति में सभी लोगों, विशेषकर सभी राजनैतिक दलों, सामाजिक संगठनों, स्वयंसेवी संगठनों, गैर-सरकारी संस्थाओं से जुड़े सभी लोगों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है ।'' समाचार में आगे आंकड़ेबाजी शुरू हो गई है । इधर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को लागू करने की यह बहस कागजों में छिड़ी हुई है, उधर जरूरतमंद बहुत से बच्चे इस बहस के परे प्राथमिक शिक्षा से ही वंचित हैं ।

बच्चों के भले की इच्छुक सरकार के शीघ्र कदम उठाने के आश्वासनों की कड़ी में 16 जुलाई को स्थानीय दैनिक में प्रकाशित एक खबर और जोड़ी जा सकती है । यह घोषणा केन्द्र सरकार के मानव संसाधन मंत्री की है कि सरकार बच्चों के कल्याण के लिए शीघ्र ही राष्ट्रीय आयोग बनाएगी और कम खर्चीली शिक्षा योजना शुरू करेगी । यहां मानव संसाधन मंत्री ने एक कदम और बढ़ाया, प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के प्रति सरकारी की वचनबद्धता जाहिर करते हुए शिक्षण संस्थाओं में मौलिक दायित्वों की शिक्षा देने के बारे में रणनीति तैयार करने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति के गठन की घोषणा कर दी ।

इस प्रकरण की प्रगति किस रफ्तार से होगी, कहा नहीं जा सकता । प्राथमिक शिक्षा और बालकल्याण के मुद्दों से जुड़ी कितनी ही घोषणाएं अखबारों और दफ्तरों की फाइलों में धूल चाट रही हैं, यह बताने की जरूरत नहीं है । ये घोषणाएं करके सरकार किसे प्रसन्न करना चाहती है यह समझ से परे है । इसी समाचार में मानव संसाधन मंत्री का आगे कहना है कि सरकार शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने संबंधी विधेयक पर संसद की स्थाई समिति की सिफारिशों की रोशनी में विचार कर रही है । यह विचार कितने वर्ष चलेगा इस बारे में मानव संसाधन मंत्री मौन हैं, लेकिन तय है कि कई बरस तक यह विचार जारी रहेगा ।

कड़वी असलियत

स्थानीय दैनिक की खबर के मुताबिक राज्य भर में (राजस्थान में) सवाई माधोपुर जिले को छोड़कर सभी जिला मुख्यालयों एवं नगरपालिका क्षेत्र में 205 प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय कागजों में चल रहे हैं । इन स्कूलों में नियुक्त 841 अध्यापक जहां तहां शहरी स्कूलों में ही प्रतिनियुक्ति से नामित स्कूलों से वेतन उठा रहे हैं । दैनिक की यह खोजी खबर बारीकी से एक एक आंकड़े को दर्शाती है ।

एक और खबर मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के हवाले से छपी है कि राजस्थान समेत छह राज्यों के अनेक बच्चे प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी नहीं कर पाते और बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं ।

एक और समाचार के मुताबिक पिछले शिक्षा–सत्र के दौरान उदयपुर जिले की आदिवासी बहुल तहसीलों में लगभग डेढ़ सौ स्कूलों पर शिक्षकों के अभाव में ताले पड़े रहे । खबर के मुताबिक इस क्षेत्र के स्कूलों में शिक्षकों के पद भारी संख्या में खाली पड़े हैं।

इन हालातों पर गौर करें तो ढुलमुल नीति और शिक्षा के प्रति कागजी समर्पण के चलते विद्यालय भी कागजों में चलें, यह स्वभाविक ही है । खोजी खबरों की हलचल भी प्रकाशित होने वाले दिन कार्यालय समय तक ही रहती है और अगले दिन अखबार पुराना हो जाता है। लोग जलसों में उदाहरण देते हैं । बुजुर्ग लोग सुबह घूमने जाते समय देश की राजनीति के साथ साथ शिक्षा की बदतर स्थिति पर निरर्थक प्रलाप करते हैं और विद्यालय कागजों में चलते रहते हैं। उन्हें कोई बंद नहीं कर सकता !

बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों के प्रति सरकार की कोई सहानुभति नहीं है । भला हो नरसिंह राव का जिन्होंने बच्चों की भूख को शिक्षा से जोड़ा । स्कूलों में गेहूं लेने के लालच में बच्चे स्कूल तो आएंगे । शैक्षणिक गुणवत्ता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उनका गेहूं प्राप्त करना हो जाता है तो फिर स्कूल छोड़ने वाले उन बच्चों का क्या होगा जो भूख के कारण नहीं, कई अन्य कारणों से विद्यालय छोड़ देते हैं ? इस पर गौर करना क्या जरूरी नहीं है ?

रही बात स्कूलों पर ताले पड़े रहने की । दरअसल आदिवासी इलाकों में मास्टरों की भर्ती में मैरिट बहुत नीचे रहती है । इधर उधर के सब अध्यापक प्रत्याशी वहीं भागते हैं । बाड़मेर और कई अन्य स्थानों पर भर्ती के नाम पर तो इस साल सिर फूटे हैं । बाकी अब तक तो चल ही रहा था और चल रहा है कि अपने जिले में दाल नहीं गले तो कमजोर जिले में घुसपैठ करो । वहां से स्थानांतरण करवा लिया जायेगा जब सरकार के नौकर बन जाएंगे । नतीजा यह होता है कि हर बार आदिवासी और कमजोर जिले शिक्षकों के अभाव से त्रस्त बने रहते हैं ।

यह भी होता है !

गुरुकुल में बच्चों का यौन शोषण शीर्षक से 17 अगस्त, 98 के 'जनसत्ता' में एक समाचार छपा है । खबर के मुताबिक दिल्ली के एक गुरुकुल में शिक्षा के नाम पर बच्चों का यौन शोषण हो रहा

है। बच्चों के यौन शोषण में गुरुकुल के आचार्य, कर्मचारी और ऊंची कक्षा के छात्र शामिल हैं। 64 साल पुराने इस आवासीय गुरुकुल में देश के विभिन्न राज्यों के गरीब बच्चों को प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की शिक्षा दी जाती है । इसी प्रकरण का पता लगाने के लिए एक स्वतंत्रता सेनानी अंग्रेजी पढ़ाने के बहाने गुरुकुल में गए और असलियत का पता लगने पर उन्होंने इसके लिए आवाज उठाई और वहां के कर्मचारियों से मार खाई ।

एक खबर और 2 अगस्त, 98 के ही प्रादेशिक दैनिक में छपी है कि मुंडावर पंचायत समिति के एक गांव के उच्च प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक छात्राओं के साथ अश्लील हरकतें करते हैं । इस आशय का ज्ञापन गांव वालों ने जिला कलेक्टर को दिया और कहा गया कि यदि इन अध्यापकों को यहां से नहीं बदला गया तो वे स्कूल पर ताला लगा देंगे।



यह स्थितियां ज्यादा आतंकित करने वाली हैं । ज्ञान मंदिर में इस तरह के कृत्य होते रहते हैं यह बात छिपी नहीं है । बहुत–सी घटनाएं ऐसी हैं जो दबा दी जाती हैं, लोक लाज के भय से, धन या ताकत के बल से। हालांकि उपरोक्त दोनों घटनाओं में जांच हुई और एक मामले का तो परिणाम भी समाचार में बताया गया कि छात्राओं के साथ अश्लील हरकत करने के लिए अध्यापक दोषी भी पाये गये।

बच्चों को मनोवैज्ञानिक प्रताड़ना और भय

24 जुलाई, 98 को समाचार एजेंसी 'वार्ता' के हवाले से छपा है कि तमिलनाडु के निकट डराईपुर कस्बे में एक तेरह वर्षीय छात्रा ने स्कूल में अपमानित महसूस करने के बाद आत्मदाह कर लिया। उसका अपराध सिर्फ यह था कि परीक्षा में उसका प्रदर्शन कमजोर रहा । दण्ड स्वरूप अध्यापक ने उसे एक लड़के से चांटा मरवाया और खिंचाई की । अपने अपराधबोध के चलते छात्रा ने मिट्टी का तेल डालकर आत्मदाह कर लिया ।

चार अगस्त के 'जनसत्ता' में एक और खबर छपी है जो बताती है कि फेल होने के बाद स्कूल छोड़ देने वाले युवकों की एक बड़ी तादाद कम वक्त में और आसानी से ज्यादा दौलत कमाने के लालच में अपराधी बनती जा रही है । यह दिल्ली पुलिस का आकलन है जो उसने दिल्ली की अपराध घटनाओं के आधार पर किया। यह देश भर के लिए सच हो सकता है । पुलिस के दावे के मुताबिक नए अपराधियों में 17 से 21 साल की उम्र के लड़के ज्यादा हैं जिन्होंने फेल हो जाने के भय से पढ़ाई छोड़ दी। 1 जनवरी से 30 जून तक पुलिस द्वारा पकड़े गये 170 लुटेरों में 160 लुटेरे ऐसे पाए गए जिन्होंने पहली बार अपराध किया और पकड़े गये । इनकी कहानी यही थी कि फेल होने के बाद इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी ।

कक्षा में छात्रों के प्रति अध्यापक के दायित्व क्या हैं ? यह तय कर देने मात्र से आत्मदाह नहीं रोका जा सकता । रही बात फेल हो जाने पर अपराधी बन जाने की, तो इस किस्म के फार्मूले हिंदी फिल्मों में खूब दिखाए जाते हैं। हालांकि उनका केन्द्र बिंदु पढ़ाई नहीं होता । यह दोष किसको दिया जाए ? उस प्रणाली को जो युवकों को अकर्मण्य बना रही है ? या फिर प्रतिस्पर्धा के उस माहौल को जो युवकों में अपराध बोध और हीनता पैदा कर रहा है ?

बच्चों के प्रति दिल दहलाने वाले अपराध

'प्रधानाध्यापक ने छात्रा का हाथ तोड़ा' शीर्षक से 3 मई को यह खबर 'जनसत्ता' में छपी कि व्यायाम ठीक से नहीं करने पर

अल्मोड़ा में एक प्रधानाध्यापक ने सभी छात्र छात्राओं के बीच एक छात्रा की पिटाई कर दी । लड़की बेहोश होकर जमीन पर गिर गई। पानी के छींटे मारकर उसे होश में लाया गया। इस पिटाई से उसके शरीर के कई भागों में सूजन आ गई तथा हाथ भी टूट गया ।

सत्ताइस अप्रेल के 'जनसत्ता' के संपादकीय के मुताबिक नई दिल्ली में जमनापार के एक पब्लिक स्कूल में एक शिक्षक ने डस्टर फेंक कर बच्चे को मारा जिससे उसकी आंख फूट गई । नौ जून की जनसत्ता के मुताबिक शगान (कुल्लू) के एक स्कूल में शिक्षक की पिटाई से छठी कक्षा के एक विद्यार्थी जीतराय की मौत हो गई। घटना को लेकर सदमें के कारण मां की आंखे पथराई हैं और स्कूल के छात्र दशहत में हैं ।

एक और खबर का उल्लेख जरूरी है । 5 अगस्त के स्थानीय दैनिक के मुताबिक अजमेर में प्राथमिक स्कूल के भवन के ढ़हने के प्रकरण में न्यायालय ने एक निजी विद्यालय के सचिव को कारावास एवं जुर्माने की सजा सुनाई । समाचार के मुताबिक पूर्व में घटित इस दुखांतिका में मासूम बच्चों सहित कुल 14 जनों की मौत हो गई थी ।

इन समाचारों से सामान्य रूप से जो प्रवृत्ति उभरकर आती है उसमें शिक्षकों का गैर–जिम्मेदारना व्यवहार तो स्पष्ट परिलक्षित होता ही है । यह मान भी लिया जाए कि बच्चे शरारती होते हैं तो भी इस किस्म के दण्ड को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता । बच्चों का अपना मनोविज्ञान होता है उन के अवांछनीय व्यवहार में सुधार कर पाना जितना मुश्किल समझा जाता है उतना ही आसान भी हो सकता है, बशर्ते उनको ठीक से समझा जाए । क्या यह सच नहीं कि दूरदराज के जिन स्कूलों में गांवों के जरुरतमंद बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं वहां जितना घटिया स्तर शिक्षा का है उतनी ही ज्यादा प्रताड़ना बच्चे झेलते हैं और दोहरे शोषण का शिकार होते हैं ?

आंखे फोड़ने या पीड़ित करने वाली घटनाएं संख्या में इक्की दुक्की हो सकती हैं लेकिन ये एक कुत्सित स्थिति की ओर संकेत करती है । किसी भी समय कौनसा बच्चा इसका शिकार हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता । क्या ऐसी मौतें उन मौतों से कहीं अधिक खतरनाक नहीं होती जो बच्चों की बसें घाटी में गिर जाने से या नदी में डूब जाने से हुआ करती हैं ?

जो परिदृश्य हमारे सामने है उसमें आतंक भी है, अपराध भी हैं, मौतें भी हैं, कमजोर विद्यालय भवन भी हैं, शिक्षकों द्वारा पिटाई भी है ।

विविध :

इस पूरे विवरण के साथ एक पक्ष और भी है । वह भी मूलत: शिक्षा से ही जुड़ा है और जिस पर पत्रकारिता की नजर रही है ।

समय समय पर प्रकाशित होने वाले बाल विकास प्रतिवेदन जिनका संक्षिप्तीकरण समाचार पत्र प्राय: फीचर या समाचार के रूप में छापते रहते हैं । इसमें 'जनसत्ता' ने ही देश में आधी सदी में शिक्षा का जायजा लिया था। इसी के आसपास ही केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री का शिक्षा नीति और व्यवस्था को लेकर बड़ा सा इंटरव्यू छपा। इस बातचीत में उन्होंने यह सनसनीखेज वक्तव्य दिया कि उच्च शिक्षा का दायित्त्व केन्द्र सरकार का नहीं है ।

इससे भी भिन्न चीजें अगर आप देखना चाहें तो खबर है कि बांसवाड़ा में एक अध्यापिका का अपहरण हो गया। अन्य खबरों में पब्लिक स्कूलों की 'किड्स परेडें' हैं । राजस्थान में कक्षा तीन से ही सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाई जाएगी । और शैक्षणिक पत्रकारिता पर स्थानीय दैनिक में छपे आलेख । बच्चों के अधिकार और शिक्षा की सामंती सोच जैसे विषयों पर 'जनसत्ता' के आलेख। कुल मिलाकर पिछले 6 माह का यह परिदृश्य है, एक विकलांग और खोखला दृश्य जो शिक्षा जगत की दिशा दर्शाता है । जो दिखाता है कि हम कहां जा रहे हैं ।

इतना तो मानना पड़ेगा कि जो कुछ छप रहा है वह झूठ नहीं है । तो फिर हमें चिंतन की शुरुआत कहां से करनी होगी ? जीतराम की मौत की दशहत से कांपते बच्चों को ढ़ांढ़स बंधाने से या किड्स परेड में शामिल हो रहे मिस बेबी और मिस्टर बेबी को हाय हैलो कहकर बुलाने से ? दो किनारों पर रह रहे हैं हमारे बच्चे और इनके मध्य जो गहरी खाई है उस पर सेतु बना पाना आसान नहीं तो कितना मुश्किल है, कम से कम इस असलियत को तो हम समझने की कोशिश करें। कुल मिलाकर हम पाते हैं कि इधर समाचार–पत्रों में शिक्षा को पहले की तुलना में ज्यादा जगह मिल रही है हालांकि शिक्षा की महत्ता के मद्देनजर अभी मिल रही जगह भी पर्याप्त नहीं है । बहरहाल, इसके पीछे कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा इस समय राष्ट्रीय एजेंडे पर है । यह अलग बात है कि देश के कर्णधारों में शिक्षा के प्रसार और उसकी गुणवत्ता को लेकर राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव बरकरार है । एक तरफ शिक्षा का चला आ रहा स्थापित ढांचा जर्जर हो रहा है, प्राथमिक शिक्षा के व्यापीकरण–अभियान प्रचारात्मक अनुष्ठानों से आगे नहीं बढ़ पा रहे तो शिक्षक वर्ग ने भी अपने नजरिये में सकारात्मक फर्क नहीं दिखाया और उधर समाज शिक्षा के प्रति अपना उपेक्षाभाव और उदासीनता छोड़ने को तैयार ही नहीं है । ◆